3

सुघड़ गृहणी और उत्साही अध्यापक टकराहट बिना प्रतिबद्धताओं का निर्वाह

सुरभि चावला*

भारत में हर पाँच सितंबर को राजधानी से लेकर छोटे-बड़े शहरों, कस्बों, मौहल्लों में माननीय राष्ट्रपति से लेकर स्थानीय निकायों के प्रमुखों के मुख से एक जुमला निकलता है, "अध्यापक राष्ट्र के निर्माता होते हैं। वे देश के कर्णाधार हैं। वे देश की नींव तैयार करते हैं। भारत के सामाजिक-सांस्कृतिक विकास में उनका महत्वपूर्ण योगदान है" आदि-आदि। पाँच सितंबर से इतर के दिनों में समाचार पत्रों की सुर्खियाँ कभी घृणा तो कभी क्रोध के साथ बताती हैं कि अमुक राज्य में अध्यापकों पर लाठियाँ बरसाई गईं। अमुक राज्य में पिछले सात दिन से भूख हड़ताल पर बैठे अध्यापकों के समूह को पानी की बौछार से तितर-बितर किया गया। अमुक विद्यालय में छापामार टीम ने विद्यार्थियों के समक्ष ही देर से आने वाले अध्यापकों को लताड़ा और भी न जाने क्या-क्या? अध्यापक वर्ग अपनी सकारात्मक या नकारात्मक छवि के लिए स्वयं जिम्मेदार हैं या समाज की उपभोक्तावादी संस्कृति, जिसके निर्माण एवं विकास में उसका स्वयं का भी योगदान है। यह बहुत गंभीर एवं महत्वपूर्ण चर्चा का विषय है। फिलहाल प्रस्तुत कहानीनुमा आलेख के माध्यम से अपनी आत्मछवि, जनछवि, अपने कर्तव्यों, अधिकारों, राष्ट्रीय सम्मानों आदि की खबरों से बेखबर एक छोटे से शहर गुलरभोज के राजकीय इंटर कालेज की अध्यापिका हरिप्रिया के अध्यापक चरित्र की बानगी प्रस्तुत की जा रही है।

हरिप्रिया अपने शहर के विख्यात अध्यापक प्रशिक्षण संस्थान से अध्यापन प्रशिक्षण की डिग्री प्रथम श्रेणी में प्राप्त करके सरकारी विद्यालय में नौकरी पाने के संदर्भ में बहुत ही सौभाग्यशाली रही है। अध्यापक प्रशिक्षण कार्यक्रम में वह क्या सीख कर आई है, यह तो पता नहीं पर एक अध्यापिका के रूप में उसकी दिनचर्या से मात्र इतना भर पता चलता है कि प्रतिदिन विद्यालय जाना, विद्यार्थियों की उपस्थिति लेना, ऊपर से आए ऑर्डरों (अधिकारियों के निर्देशों) की तामील करना यही अध्यापक का कर्म है। व्यक्तिगत एवं पारिवारिक जीवन में सफलता के साथ-साथ अपनी पेशेवर ज़िंदगी में भी गुणवत्तापरक प्रदर्शन किया जा सकता है, ऐसी

* *विद्यार्थी,* अंबेडकर विश्वविद्यालय, दिल्ली

कोई समझ उसके व्यवहार से नहीं झलकती परंतु एक समय ऐसा भी आता है कि उसके भीतर का अध्यापक मन जाग उठता है। अब वह मात्र वेतनभोगी अध्यापक नहीं है। वह हँसमुख, बिंदास, चंचल, कर्तव्य परायण, अपने विद्यार्थियों को, अपने अध्यापन के पेशे को समर्पित हरिप्रिया है।

मज़े की बात यह है कि पहले जिस परिवार को खुश रखने के लिए वह मात्र 'नौकरी' भर कर रही थी यानी सिर्फ़ विद्यालय आने-जाने भर को अपनी नौकरी का हिस्सा मान रही थी अब वही परिवार उसको भरपूर सहयोग दे रहा है कि वह अपनी नौकरी के साथ न्याय कर सके और जिन विद्यार्थियों के रहते उसे वेतन मिलता है उन विद्यार्थियों की सीखने संबंधी उपलब्धियों पर जश्न मना सके। यह परिवर्तन उसके भीतर कैसे आया क्या कोई घटना-दुर्घटना घटी जिसने उसके आत्मबोध को जाग्रत किया, क्या कोई ऐसा अधिनियम पारित हुआ जिसके रहते वह यकायक अध्यापकीय कर्तव्यों के प्रति सजग हो उठी या फिर विद्यालय में लगे सीसीटीवी कैमरों के भय के रहते वह चौकन्नी हो उठी या फिर किसी विद्यार्थी विशेष की सीखने के प्रति चाहत उसे उसकी सामाजिक प्रतिबद्धता का एहसास करा सकी।

इन प्रश्नों के उत्तर कहीं न कहीं इस कहानीनुमा आलेख में मिल जाएँगे। यह बताना आवश्यक है कि यह कथा लेशमात्र भी काल्पनिक नहीं है। अभिव्यंजना के लिए किसी भी तरह से काल्पनिक घटनाओं का सहारा नहीं लिया गया है और महत्वपूर्ण बात तो यह है कि अध्यापिका से उसकी अनुमति भी प्राप्त कर ली गई है। जब उससे पूछा गया कि अनुमति देने में कोई संकोच या संदेह तो नहीं तो उसने निर्भीकता से बताया कि —

1. संभवतया आधे दिन की नौकरी की चाहत वाली लड़कियाँ ये समझ सकें कि 'अध्यापक जीवन' सिर्फ़ नौकरी भर नहीं है। यह 'जीवन' है।
2. अध्यापक की नौकरी कर रही बहू की चाहत करने वाले लोग यह समझ सकें कि उनके इंजीनियर, डॉक्टर, व्यापारी बेटे के कर्म से कहीं अधिक महत्वपूर्ण उनकी बहू की नौकरी है।
3. हर अध्यापक अपने पेशे को जिए। इन शुभेच्छाओं के साथ हरिप्रिया ने आपबीती साझा करने की अनुमित दी जो

'नज़र उठा के देख तो बदल रही है ये समाँ' इस आलेख के माध्यम से प्रस्तुत है।

हिमालय की तराई में एक छोटा परंतु बहुत ही महत्वपूर्ण शहर है — गुलरभोज। हरिप्रिया इस शहर के राजकीय इंटर कॉलेज में अध्यापिका है। हरिप्रिया के माता-पिता अपने-आपको बहुत सौभाग्यशाली मानते हैं कि उनकी बेटी एक सरकारी विद्यालय में अध्यापिका है। उनका कहना है कि इस नौकरी की बदौलत ही तो उनकी बेटी का विवाह समय रहते अच्छे घर में हो गया, वरना हरिप्रिया जैसी सामान्य कदकाठी वाली लड़की के लिए उन्हें बहुत मशक्कत करनी पड़ती। उधर हरिप्रिया की सास माँ भी बहुत खुश हैं। उनकी दिली इच्छा थी कि उन्हें बहू के रूप में सरकारी टीचर मिल जाए तो उनकी मौज हो जाएगी। चार घंटे की नौकरी और उसके बाद घर-परिवार की सेवा। दोतरफ़ा कमाई वाली बहू पाकर सास माँ भला क्यों न खुश रहती। हरिप्रिया ने अपनी पेशेवर ज़िंदगी

यानी कि अध्यापकीय जीवन में अपनी प्रतिभा का परिचय दिया या नहीं दिया यह तो अभी एक सवाल ही है, पर अपनी ससुराल में अपनी सेवा, समर्पण व त्याग की भावना, पाककला, सवाल-जवाब न करने के स्वभाव के रहते सभी का मन जीत लिया है। घर की तमाम ज़िम्मेदारियों का दारोमदार उसने अपने ऊपर ले लिया है। घर में किसी ने मेथी के पराठे खाने की इच्छा जाहिर की है तो वह विद्यालय जाते समय मेथी खरीद लेती है और न जाने कब चुन कर साफ़ कर लेती है। घर लौटने पर सबको मेथी के स्वादिष्ट पराठे मिलते हैं। मटर और छोलिया की छिलाई, छोटी-मोटी तुरपन ये सब काम कब-कहाँ हो जाते हैं, यह सब रहस्य ही है पर रहस्य जानने की कोशिश कोई नहीं करता।

घर में अतिथि आ जाए या किसी की तबियत बिगड़ जाए तो देवर जी तुरंत फटफटिया लेकर भाभी जी के विद्यालय पहुँच जाते हैं और भाभी जी यानी हरिप्रिया भी विद्यालय प्रमुख की कृपा से देवर के साथ छुट्टी की घंटी से पहले घर पहुँच जाती हैं और कर्तव्यपराणयता का परिचय ही नहीं देतीं, बल्कि लोहा मनवा कर रहती हैं।

विद्यालय जाने के समय यदि कोई आवश्यक-अनावश्यक काम पड़ जाए तो हरिप्रिया को देर से पहुँचने पर कोई मलाल या परहेज नहीं। "अरे भई सरकारी नौकरी है। छोटी-मोटी देर तो चलती ही है। नहीं तो प्राइवेट नौकरी वाली न ब्याह लाते।" हरिप्रिया रुककर काम निपटाती है और ससुराल के प्रति समर्पित भाव का परिचय देती है। घर पर पठन-पाठन की तैयारी या कॉपियों की जाँच ऐसा कोई काम लेकर नहीं आती। स्कूल में चार घंटे दे दिए, ये क्या कम हैं।

वर्ष 2011 के बाद हरिप्रिया के घर यानी उसकी ससुराल का दृश्य

हरिप्रिया की सास घर के बाहर कपड़े फैलाकर लौट ही रही थी कि पड़ोसन ने लपककर पूछा – "ए जिज्जी आजकल बहुरिया नज़र न आती। कहीं पीहर गई है का?"

"ना ना पीहर तो ना गई। भीतर बैठी किताब जाँच रही है।" सास बोली।

"क्यों भला! परमोशन होवेगी का?"

"ना ना परमोशन भरमोशन का मामला न ह्वैगा। बो आट्टी आया है न तो सभन टीचरों को पाठ पढ़ि के जाना होता है।" सास कुछ जल्दी में थी और घर के भीतर हो गई।

वार्तालाप शायद अभी और आगे बढ़ता। दो एक दिन बाद पड़ोसन को फिर से हरिप्रिया की सास मिल गई आँगन बुहारती हुई।

पड़ोसन ने माथे पर अँगुली टिकाई और कुछ हैरानी से बोली — "ऐ जिज्जी ए का। जिनके घरों में बहू दुल्हनिया हो बै, वो बड़ी काम करते अच्छी न लागै।"

"ठीक कहती हो। अभी तक तो बहू ही करती थी पर वो 'टीलम' बना रही है ना बनावैगी तो नौकरी पे बात आ जावेगी।" सास ने बहुत ही सहजता से कहा तो पड़ोसन ने उत्सुकता व अधीरता से पूछा — "टीलम' मतलब की...?"

"अरे टीलम, टीलम न जानौ का। वैसे तो मैंने भी

पैली बार सुना वो कागज़-कपड़े की कोई चीज़ होवै उसी को दिखाकर पाठ पढ़ाया जाबै करै अब तो। बो 'आट्टी' आया है न।" सास ने बात को समाप्त कर देने वाले लहजे में कहा।

पड़ोसन चली तो गई पर ढेर सारे सवाल लेकर। सवालों और शंकाओं के घेरे में फँसी पड़ोसन को जल्दी ही मौका मिल गया दोबारा संवाद करने का। हुआ कुछ ऐसा कि हरिप्रिया की सास घर के बाहर चबूतरे पर बैठी मटर छील रही थी। पड़ोसन ने छज्जे पर से झाँक लिया था। उलटती-पुलटती सी आ पहुँची और मटर छीलने में हाथ बँटाने लगी। एक फली, दो फली, तीन... ये चार फलियाँ होते न होते पड़ोसन पूछ ही बैठी — "जिज्जी बहू अब तक न लौटी का? इतनी बेर तो लौट ही लेती थी न।"

"हाँ, एक बजते-बजते आ ही लेती थी ना पर वो मरा 'आट्टी' आया है न तो छुट्टी के बाद भी रुकना पड़ता है।" हरिप्रिया की सास ने पड़ोसन की शंका का समाधान करना चाहा। पर पड़ोसन की तो शंकाएँ जैसे और बढ़ गई हों। हाथ का काम रोक कर बोली, "जिज्जी! पिछले कितने रोज से देख रही हूँ। तुम 'आट्टी साब' की बात कर रही हो। कोई बहुत बड़ा अफ़सर है का ये। मुआ कब तक रहेगा ये स्कूल में। कहीं ऐसा तो नहीं कि 'आट्टी साहब' का बहाना करके बहू काम से जी चुराबै को चाहे।"

"ना, बनमाला ना! ये बात ना है। बहू तो खूब सेवा करी हमारी और अब भी कोई मनाही ना है उसकी तरफ़ से। वो तो 'आट्टी' आया है न जबसे, तबसे बेचारी पर स्कूल का बोझा बहुत पड़ गया है। ना तो बेचारी सेवा करने से जी कभी न चुराबै।"

"तुमने तो टीचर बहू यो ही सोच कर ली थी कि नौकरी और ऊपर से घर का कामकाज भी समेट लेवेगी पर...।"

अब सास कुछ अनमनी सी हुई पर संयत होकर बोली – "हाँ! सोचा तो कुछ यूँ ही था और ठीक भी निकला पर मरा जब से 'आट्टी' आया तभी से गड़बड़ हो गई। भतेरे काम बढ़ गए अब टीचरां के। बहू हमारी कहे थी कि अम्मां! अब टीचरां की नौकरी आसान ना रह गई। अब वो बात न रह गई कि वो पर्स झुलाते-झुलाते जाओ स्कूल में और मौजमस्ती करते वापिस आ जाओ।"

"क्यों? अब ऐसी क्या बात होली?"

"अरे! वही 'आट्टी' आया ना है का। 'आट्टी' के आने से तो बहू पर भौत काम बढ़ गया स्कूल का। अब बिचारी घर में भी करें और स्कूल में भी मरे सो मैंने सोची घर में तो मैं ही हाथ बँटा लूँ बिचारी का। बतावै था कि पैले तो घर से काम करके जाए तो किलास में बैठ के मोढ़ामाटा आराम कर लैवे थी पर अब बताबै कि 'आट्टी' आने से खूब तो नाचना कूदना पड़ता है ऊपर से खड़े-खड़े पढ़ाओ। बेचारी के गोडन पर ज़ोर ना पड़ेगा का?"

"ई मरदुआ 'आट्टी' का हर स्कूल में आया हैं? ओ डबल ओसारे वाला घर है ना जिनका, उनकी बिटिया भी तो टीचर ठहरी बल सरकारी कालिज में। कहवै रही थी कि मौसी आजकल तो खूब-खूब थकायी होती हवैगी कालिज में। बच्चन लोगिन को ऊँचा न बोली सकत कोई भी टीचर।"

पड़ोसन के पास सवाल भी था और विद्यालय में हो रहे बदलाव की सुनी-सुनायी जानकारी भी। हरिप्रिया, हरिप्रिया की सास और उनकी पड़ोसन

जिन आट्टी साहब के आने से कुछ चिंतित, कुछ अधिक व्यस्त और अपने पेशेवर ज़िंदगी के प्रति कुछ अधिक उत्तरदायी हो गए हैं तो वे आट्टी साहब है — आर.टी.ई. यानी कि राइट टू एजुकेशन यानी कि नि:शुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा का अधिकार अधिनियम–2009। यह अधिनियम भारत की औपचारिक विद्यालयी शिक्षा के संदर्भ में एक मील का पत्थर है। इस अधिनियम के लागू होने से विद्यालयों का चरित्र बदला है। इस बदले हुए चरित्र ने अध्यापकों से अपेक्षा की है कि अब वे अपने पेशे के प्रति सजग एवं चौकन्ने हो जाएँ और इस बात को स्वीकार करें कि जिन बच्चों की बदौलत उन्हें वेतन मिलता है, उनके सीखने के प्रति अपनी जवाबदेही सुनिश्चित करें।

हरिप्रिया और उन जैसी सभी अध्यापिकाओं और अध्यापकों ने अपनी पारिवारिक व सामाजिक ज़िम्मेदारियों को निभाने के लिए अपनी क्षमताओं तथा समझदारी का अधिकतम उपयोग किया। अपनी पेशेवर ज़िंदगी एवं ज़िम्मेदारियों के प्रति उन्होंने उदासीनता दिखाई। अगर हलके-फुलके शब्दों में कहें तो कह सकते हैं 'बहुत ही हलके में लिया।' शिक्षा का अधिकार अधिनियम–2009 उन्हें प्रोत्साहित एवं प्रेरित करने के साथ-साथ बाध्य भी करता है कि अब वे विद्यालय आने-जाने यानी कि हाज़िरी लगाने भर के लिए वेतन नहीं पाएँगे। अब निश्चित रूप से उन्हें वे सब काम करने होंगे जिनके लिए उनकी नियुक्ति हुई है। वे 'अच्छी बहू' के रूप में स्थापित हो पाती हैं या नहीं, यह महत्वपूर्ण नहीं है पर यह अवश्य अति महत्वपूर्ण है कि यदि उन्होंने अध्यापक के पेशे को अपनाया है तो वास्तव में 'अध्यापक' बनके दिखाना होगा। हरिप्रिया ने अपने विद्यालय के बदलते हुए स्वरूप के अनुसार अपने को बदलने का प्रशंसनीय कार्य किया है और इसके लिए उनकी सास माँ ने उन्हें जिस प्रकार से सहयोग दिया, वह भी सराहनीय है।

हरिप्रिया अब प्रातःकालीन सभा के आयोजन यानी विद्यालय खुलने के 10–15 मिनट पहले विद्यालय पहुँच जाती है। विद्यालय पहुँचकर एक-दूसरे के परिधानों की सराहना करना, व्यंजनों आदि को बनाने की विधि पूछना या घर के कामों से शरीर में पसरी थकान उतारना अब उसकी विद्यालयी दिनचर्या का हिस्सा नहीं है। अब वह सुनिश्चित करती है कि —

- उसकी कक्षा के बच्चे विद्यालय पहुँचे या नहीं पहुँचे। पहले उसे अपनी कक्षा के बच्चों की संख्या पता थी अब वह उन्हें उनके नाम से जानती व पहचानती है।
- किसी विद्यार्थी के न आने पर वह सरोकार प्रदर्शित करती है कि अमुक विद्यार्थी क्यों नहीं आ पाई या आ पाया। भिन्न-भिन्न तरीकों से पता लगाने की कोशिश करती है।
- अब वह घर से योजना बनाकर लाती है कि आज उसे 'विशेष प्रातःकालीन सभा' का आयोजन करना है। उसकी तैयारी और स्फ़ूर्ति बच्चों में पूरे दिन भर के लिए उमंग भर देती है।
- विद्यालय में नामांकित सभी बच्चों को वह कोरी स्लेट नहीं समझती। उनके अनुभवों को सुनने-समझने का धैर्य उसने अपने में पैदा किया है।

- उन्हें अपनी ओर आकर्षित करने, शिक्षण प्रक्रिया में साझीदार बनाने के लिए गरिमामय संबोधनों का प्रयोग करती है। "ए लड़की! इधर आ। जा रजिस्टर उधर रख। ए शैतानो! ये क्या शोर मचा रखा है। मूर्खों का जमावड़ा है ये क्लास तो।" इस प्रकार के संबोधन अब उसके जहन में नहीं हैं क्योंकि बच्चे उसकी कक्षा के विद्यार्थी है, दया के पात्र नहीं।
- अपने विषय की बारीकियों को प्रभावशाली तरीके से समझाने के लिए हरिप्रिया 'टीलम' 'टी.एल.एम.' यानी कि शिक्षण-अधिगम सामग्री भी बनाती है। इसके लिए वह अपने परिवार का सहयोग भी लेती है।
- एक समय था जब उसके पर्स में एक छोटी-सी फेहिरस्त होती थी कामों की। कामों की प्रकृति कुछ ऐसी होती थी —
  - अम्मां के ब्लाउज में हुक टाँकना।
  - बढ़की जिज्जी के यहाँ पहलौठी का सामान पहुँचाना।
  - मूरती चाची के लिए बिछुवा की जोड़ी खरीदना।
  - रसोई की ऊपर वाली टांड की सफ़ाई
  - पीठी के लिए उड़द भिगोना।

अब हरिप्रिया के कामों के फेहरिस्त कुछ अलग-सी दिखती है —

- उपस्थिति पंजिका पर कवर चढ़ाना।
- अरविंद की माँ को बुलवाना कि अरविंद के बस्ते में एक भी कॉपी-किताब नहीं है।
- आकलन पंजिका बनाना।
- बड़ी बहन जी 'प्रधानाचार्या' से पोर्टफ़ोलियो रखने के लिए बक्सा माँगना।
- विद्यार्थियों को गार्डन में ले जाने की लिखित में अनुमति लेना।

पहले हरिप्रिया एक छोटा-सा पर्स ले जाती थी जिसमें पैसे, मोबाइल फोन, रूमाल, लिपस्टिक आदि भर के लिए जगह होती थी। अब उस छोटे पर्स के साथ-साथ एक झोला भी होता है, उसमें हर दिन अलग-अलग तरह की मज़ेदार चीज़ें होती हैं; जैसे — गेंद, चुंबक, चिकनी मिट्टी, लकड़ी के भिन्न-भिन्न आकार के छोटे-बड़े टुकड़े। तरह-तरह के बीज, सीपियाँ और भी न जाने क्या-क्या समेटे रहती है। इस झोले के अलावा कभी-कभी एक और झोला भी जुड़ जाता है उसके हाथ में जिसमें कॉलेज स्कूल के बच्चों की कॉपियाँ होती हैं। स्कूल में तो बच्चों के साथ पढ़ने-पढ़ाने, खेलने-कूदने में समय बीत जाता है तो कॉपियों की जाँच घर में होती है। यद्यपि उसकी कोशिश यही रहती है कि हर विद्यार्थी की कॉपी उसको बुलाकर उसके सामने ही जाँची जाए पर हर बार ऐसा संभव नहीं हो पाता है तो घर पर कॉपियाँ ले आती है। पहले या तो हरिप्रिया कॉपियाँ जाँचती ही नहीं थी या फिर जाँच के नाम पर सही या काटे के निशान होते थे लाल-लाल और साथ में ढेर सारी लताड़ पर अब तो परिवारवालों के साथ मिलकर कॉपियाँ जाँची जाती हैं। परिवारवालों के लिए 'स्वस्थ मनोरंजन समय' होता है कॉपियों की जाँच। जानते हैं क्यों? दरअसल हरिप्रिया ने अब कुंजियों/गाइडों पर एकदम प्रतिबंध लगा दिया है। गाइडों पर स्वयं की निर्भरता भी कम कर दी है। दूसरी बात यह कि वह पाठ्यपुस्तक में पाठ के

पीछे लिखे प्रश्नों के उत्तर श्यामपट्ट पर न स्वयं लिखती है और न लिखवाती है। विद्यार्थियों को मौके देती है कि वे अपने-अपने अनुभवों के आधार पर सवालों के उत्तर दें। सवालों के उत्तर देने के अलावा और भी बहुत से अवसर उपलब्ध करवाती है जब विद्यार्थी आपस में भिन्न-भिन्न विषयों पर संवाद कर सकें। अब हरिप्रिया अपने विद्यार्थियों की प्रगति के बारे में सदैव सचेत रहती है। घर पर पूरी तैयारी करके स्कूल जाती है। अब उससे सभी बच्चे खुश हैं और सर्वांगीण विकास की राह पर हैं।

हरिप्रिया में यह परिवर्तन कैसे आया?

जिस तरह से हरिप्रिया की सास बार-बार 'आट्टी आया है न' कह रही थी उससे तो यह आभास होता है कि

- संभवतः आर.टी.आई. एक्ट आने के बाद स्कूल के प्रशासन ने कुछ सख्तियाँ लागू कर दी हों। या फिर
- प्रशासनिक अधिकारियों के दौरे बहुत जल्दी-जल्दी होने लगे हों। या फिर
- अभिभावकों ने अध्यापकों की जवाबदेही पर बात आरंभ कर दी हो और वे अध्यापकों से सवाल जवाब करने लगे हों। या फिर
- विद्यालय की प्रमुख 'प्रधानाचार्या' बदल गई हों और अब जो नई प्रधानाचार्या आई हों वे अधिक सख्त हो जिनके डर से हरिप्रिया बदल गई हो।

अटकलें कुछ और भी हो सकती है। उपर्युक्त चारों अटकलों में से एक भी सही नहीं है। दरअसल हरिप्रिया के स्वभाव और कार्यप्रणाली में जिस तरह का परिवर्तन आया है वह किसी 'डर' की बदौलत तो आया नहीं दिखता। क्योंकि 'डर' चाहे आर.टी.आई. का हो या प्रशासनिक अधिकारियों के दौरे का या फिर प्रधानाचार्या की सख्ती का या फिर अभिभावकों का, 'डर' किसी भी अध्यापक के आने-जाने के समय को नियंत्रित कर सकता है। 'डर' कक्षा में उपस्थित रहने के लिए बाध्य कर सकता है। 'डर' पाठ्यक्रम पूरा करवाने की दिशा में मोड़ सकता है। 'डर' कक्षाकार्य, गृहकार्य करने-करवाने की नियमितता पैदा कर सकता है पर 'डर' हरिप्रिया या किसी भी अध्यापक में बच्चों के प्रति लगाव पैदा नहीं कर सकता है। 'डर' बच्चों को सीखने-सिखाने के सरस परिवेश सृजित करने के लिए ललक पैदा नहीं कर सकता। 'डर' बच्चों की शिक्षा से संबंधित पुस्तकें पढ़ने के लिए प्रोत्साहित नहीं कर सकता है तो फिर हरिप्रिया का अध्यापकीय मन एकदम जाग्रत कैसे हो गया? झरने-सा बहता, बौद्धिक जीवन कैसे उसके मन में हिलोरें लेने लगा? रट्टेबाजी के स्थान पर खेल, कहानियाँ, सौंदर्य, संगीत, कल्पना, अन्वेषण, प्रेक्षण, कैसे उसके दिन-प्रतिदिन के कक्षा अध्यापन के हिस्से बन गए।

जिस तरह का भावात्मक संबंध अपने विद्यार्थियों से जुड़ने लगा था, वह न तो किसी 'डर' का परिणाम था और न किसी 'प्रशिक्षण' का। दरअसल हुआ क्या कि एक दिन हरिप्रिया अपनी रोज़मर्रा की शैली में बच्चों की कॉपियाँ जाँच रही थी। कक्षा की कुछ बड़ी-सी दीखने वाली लड़की को मॉनीटर बना कर कक्षा में चुप्पी बनाए रखने का काम सौंप दिया था। सभी बच्चों को हेड डाउन करवा दिया गया था। खुसर-पुसर इधर-उधर देखना, स्व अध्ययन किसी भी चीज़ की अनुमति नहीं थी। यानी कि 'अनुशासन' बना

रहे बस यही एकमात्र उद्देश्य था जिससे कॉपी जाँचने के काम में किसी प्रकार की कोई बाधा न आए।

यूँ जो वह बहुत ही बेमन से सरपट गति से कॉपियाँ चैक कर रही थी फिर उसकी निगाह एक कॉपी में रखी एक सुर्ख रंग की परची पर पड़ी। उसने पहले तो परची को नज़रअंदाज किया, फिर फेंकना चाहा पर फिर न जाने क्यों खोल कर देखा। उसमें लिखा था — "आदरणीय मैडम जी, आप हमें पढ़ाती हैं। हम आपकी तरह बड़े लोग बन जाएँगे न। आपको खूब बरकत मिलेगी।" हरिप्रिया इस परची के लिए तब तक बैठी रही जब तक कि घंटी नहीं बज गई। उसने परची लिखने वाली बच्ची को अपने पास बुलाया। उलझे बाल, उधड़ी फ्रॉक, आँखों में कीचड़ पर उस कीचड़ में भी जगमगाते सपने लिए वनमाला उसके समक्ष खड़ी थी। मैडम के हाथ में अपनी लिखी परची देख उसके मुख पर डर व अचरज के मिश्रित भाव थे। वह कातर शब्दों में बोली — "मैडम जी, डाँटना मत गलती से लिख गई। अब से नहीं करूँगी।" इस याचना के साथ-साथ विनय भी थी कि 'मैडम जी पढ़कर हम भी बड़े बन सकेंगे?' बस यह वह बिंदु था जहाँ से हरिप्रिया ने अपनी राह बदल ली। उसने स्वयं से सैकड़ों सवाल किए, उसने अपने पिछले अध्यापकीय जीवन में झाँका। वह स्वयं से डर गई। कितने ही बच्चों को उसने यों ही बिना कुछ सीखे विद्यालय के बाहर भेज दिया। अभिभावकों ने कितनी अपेक्षाएँ रखी थीं उससे और उसने उन अपेक्षाओं को किरच-किरच कर दिया था। उसने अपने आपसे संवाद किया। उसके पास समय नहीं था अपने प्रशिक्षण पाठ्यक्रम को कोसने का, उसके पास समय नहीं था अपने अभिभावकों पालकों संबंधियों को उलाहना देने का। उसने तभी से एक संवेदनशील अध्यापक बनने का निर्णय ले लिया जिसका आज तक वह पालन कर रही है और व्यवस्था द्वारा सौंपे गए तरह-तरह के काम इसके आड़े नहीं आते। काश! हमारे देश के सभी शिक्षक इतने ही सहज और संवेदनशील बनें — यह हम सभी की शुभेच्छा है।